प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल जी

की

सात कविताएँ

वक्त

कभी लम्हा वक्त बन जाता है,
कभी वक्त लम्हें में बदल जाता है।

जमाना हो गया,
मैं भी उम्मीद करता था,
वक्त की, अच्छे वक्त की,
मेरे वक्त की।
वो वक्त,
जिसे मैं अपना कह सकूँ।

किसी ने बड़े प्यार से कहा था,
'मेरा भी वक्त आएगा',
किसी ने बड़े नाज़ से कहा था,
'तेरा वक्त ज़रूर आएगा।'

मैं अब भी उस लम्हें को याद करता हूँ,
उस लम्हें के हर कतरे को याद करता हूँ,
मुझे दरकार है उस गुजरे लम्हें की,
कहता हूँ हर चंद क्या है मेरा लम्हां।

वक्त बड़ा अच्छा लगता है,
इसे सुनना, इसकी बातें सुनना,
वक्त-वक्त की बातें हैं।
यही सोच कर खुश हो लेता हूँ,
आज नहीं तो कल मेरा भी वक्त आएगा।

बड़ी अजीब बात है,
वक्त आता है,चला जाता है,
और मासूम लम्हों को उलझा जाता है।

बड़े यकीं से इक लम्हें को पकड़ा मैंने,
पूछा मैंने अब बता दे मेरे यार,
कहाँ छुपा रखा है मेरे वक्त को तूने।

लम्हा बड़ा शरारती निकला,
थोड़ा नटखट और खुराफाती निकला,

बोला जिस दिन तूने पकड़ लिया मुझे,
तेरा वक्त खुद-ब-खुद निकल आएगा,
बेलिहाज़ हो कर तेरी आगोश में सिमट जाएगा।

वक्त तेरा कहीं और नहीं,
तेरी आँखों में छिपा अक्स कोई और नहीं,
तेरा वक्त तो तू खुद है,
तेरा हर लम्हा तेरे वक्त में है।

मुझे क्यों पकड़ते हो,
पकड़ के क्यों इतना अकड़ते हो ?
अगर है हौसला तो मिला लो निगाहों से निगाहें,
पकड़ लो अपने वक्त को जो लोग चुरा ले जाते हैं गाहे-बगाहे

वक्त बड़ी चीज़ है,
मत समझो कि नाचीज़ है,
जिसने पा लिया,
समझो खुदा हो गया।
जिसने दिला दिया,
समझो खुदा हो गया।
लम्हा बोलता गया,
मैं अवाक् उसको तकता गया।

मानों लम्हा ना हो कोई खुदाई सी हो,
मुझसे निकला मानों कोई और 'मैं' हो।

मुझे आ गया प्यार उस लम्हें पर,
लरज गया था हर बार उस लम्हें पर।
वो कह रहा था कुछ यूँ बातें मुझसे,
मेरी हस्ती को दिखा रहा था कोई हस्ती जैसे।
वक्त की खोज बड़े वक्त से कर रहा था मैं,
कभी अपनों से,कभी परायों से बिछड़ रहा था मैं।

काश! वक्त की कोई पहचान होती,
काश!! इसकी राह थोड़ी आसान होती।
मैं लम्हें में समा जाना चाहता था,
लम्हा था के मुझसे निकल जाना चाहता था।
बातें बड़ी अच्छी सी लग रही थीं उसकी,
जज्बात बड़े प्यारे लग रहे थे उसके।

आज इक लम्हें ने,
सदियों का तारुफ़ दिया था मुझे ।
आज इक लम्हें ने,
मेरे वक्त से मिला दिया था मुझे।
मेरा वक्त कहीं और नहीं,
मेरे लम्हों में था।
मेरे लम्हें मेरे वक्त की,
तक़दीर बने बैठे थे।
आज इक लम्हें ने,
सदियों का तारुफ़ दिया था मुझे।

रौशनी और माँ

अनगिनत रौशनी मिल रही थी,
कुछ अंदर से तो कुछ फ़िज़ाओं से।
कुछ मद्धम मद्धम सा था,
तो कुछ चकाचौंध कर रही थी।

आँखें अब भी ढूंढती हैं,
उन गुलाबी रंगों को,
चमकते खास चटक रंगों को।
चेहरा मानों चेहरा न हो,
दहकता सूरज हो गया हो।

सब खेल है तो सिर्फ मद्धम,
तेज और चमकती रौशनी का।
अगर फर्क है तो सिर्फ,
मद्धम,तेज और चमकती रौशनी का।
कुछ लोग चमकते रहते हैं,
गोया चमकना ही उनकी फितरत है।

फिर बुझना भी होता है,
बेशक मंद भी पड़ते हैं,
सब खो जाता है,
चमक के बाद सिर्फ अँधेरा रह जाता है।
हाँ! कुछ ऐसे भी होते है,
बुझते हैं,और फिर चमक उठते है।

कितना मज़ा आता है,
बड़ा अच्छा भी लगता है,
बुझ के फिर से चमकना उसका।

ये दुनिया फानी है,
अनजानी भी है,
कब चमकेगी और बुझेगी,
कहाँ किसी ने जाना है ?

दिल में भी चमक उठती ही है,
सब खेल तो चमक का ही है,

चमक न होती तो कुछ भी न होता।
गरीब और अमीर का फर्क भी,
बस चमक से ही होता है।

बड़ा प्यार था उससे मुझे,
जब भी शाम होती,
एक डिबरी जल उठती,
और माँ मुझे अपने सीने से लगा लेती।
गोद में मुझे छुपा लेती थी।

अब तो उस डिबरी की मद्धम रौशनी,
मुझे बड़ी अच्छी लगती,
ये रौशनी मेरी माँ मुझे दे देती थी।
माँ का सर पर हाथ फेरना,
मुझे पुचकारना,
शेर, साधु और जंगल की कहानियां सुनाना,
सब मानों एक जादू सा लगता था।
कब नींद की आगोश में गया और कब सुबह हुई,
कहाँ पता चलता था !

अब भी जब कहीं मद्धम सी रौशनी दिखती है,
अपनी माँ को ढूंढता हूँ।
इसी आस में उजालों से दूर होता हूँ,
शायद मंद रौशनी में कहीं माँ मिल जाए।

आज मेरे घर में हर तरफ रौशनी है पर माँ नहीं है,
शेर, जंगल और साधु की कहानियां नहीं है।
माँ शायद मेरी नींद चुरा ले गई,
और मुझे ये चमकती रौशनी दे गई।

लोग कहते है,सुना है मैंने,
चमकती रौशनी तरक्की की निशानी है।
पर मैं ना समझ पाया इस फलसफे को।
इस रौशनी को बेचकर,
कुछ अँधेरा मिल जाए तो अच्छा है।
इस रौशनी के बदले,
मेरी माँ मिल जाए तो अच्छा है।

लोग मुझे पागल कह लें,
तब भी चलेगा।
पर क्या मुझे मद्धम सी रौशनी वाली,
डिबरी मिल पाएगी ?
क्या मेरी माँ फिर से मुझे मिल जाएगी ?

सब बदल जाता है,
वक्त,लोग और रौशनी भी,
पर दिल से माँ की आस क्यों नहीं जाती ?
क्यों अंधेरों में खींचा चला जाता हूँ ?
माँ तुझसे फिर क्यों नहीं मिल पाता हूँ ?

परियों का देश

परियों का है देश निराला,
कोई अनोखा, कोई मतवाला।

यहाँ वहां पर सब हैं फिरते,
नील गगन में उड़ते रहते।

यहाँ अश्व हैं पंखों वाले,
मंद महकते रंगों वाले।

कोई किसी से बैर न रखता,
मिल जुल कर आपस में रहते।

यहाँ की परियां खुशियां देती,
हर मंज़र में रंग हैं भरतीं।

पर्वत भी हैं ऊँचे ऊँचे,
देखो बादल कहाँ हैं पहुंचे।

सतरंगी दुनिया है न्यारी,
अतरंगी चीज़ें हैं प्यारी।

बिन काँटों के फूल हैं खिलते,
सुबह शाम और रात महकते।

नित कोयल है कूक सुनाती,
जुगनू संग तारे बतियाते।

हम परियों से प्यार करेंगे,
बातें उन संग चार करेंगे।

मिलना इनका मोहक लगता,
पावन मुदित मन पुलकित होता।

इन का प्यार है सीधा साधा,
ना पर्दा,ना छल की भाषा।

उत्तम अतिशय रीत यहाँ की,
गीत,मीत और प्रीत यहाँ की

परियों का है देश निराला,
बड़ा अनोखा,बहुत मतवाला।

कल की ही बात है

कल की ही बात है,
कुछ पुराने खिलौने
मिल गए थे अटारी पर।
कुछ डिब्बे,कंचे,माचिस,
और कोका कोला के ढक्कन भी।

बचपन की गलियों का
सुहाना सफर,यूँ अटारी पर मिल जाएगा
सोचा न था।

बड़े मासूम से चेहरे,
चल रहे थे मेरी नज़रों के सामने,
एक के बाद एक।

सब अपने थे,मेरे अपने,राजू,गुड़िया,
बंटी,बच्चू और भी कई
सभी खिलखिला रहे थे,
खेल रहे थे,
कूद रहे थे।

कोई किसी की पीठ पर चढ़ा था,
तो कोई अपने नए कपड़े दिखा रहा था,
कोई छुप के बातें भी सुन रहा था।

पर सब खुश थे।
ऐसे खुश जैसे,
चेहरे पर सोना चमक रहा हो।
दांत तो ऐसे लगते थे
मानों किसी ने हीरे मोती जड़ दिए हों।

चवन्नी की दस टॉफियां
सब के लिए पर्याप्त थीं
सब मिल बाँट कर खाते और खुश हो लेते थे।

मुझे याद है जब एक गौरेये
का बच्चा पेड़ से गिरा
और चुन्नू उसे उठा कर लाया,
सब ने मिलकर उसे पानी पिलाया।
जब भी नन्ही चिड़िया चीं चीं करती,
सब बच्चे सहम जाते।

फिर बड़ी मशक्कत से उसे वापस
पेड़ पर उसके घोंसले में रख आये थे।
कइयों को तो चोट भी लगी थी,
इस मशक्कत में।
पर किसी ने भी घर जाकर सही कारण नहीं बताया था।

बनवारी की गाय का बछड़ा,
एक बार घर से भाग गया था।
भरी दुपहरिया में हम उसे ढूंढने गए थे।
सारा मोहल्ला छान मारा था,
और फिर वो घर के पिछवाड़े में ही मिला था।

आज भी टाफियां मिलती हैं,
पर इम्पोर्टेड पैकिंग में,
बच्चे उसे बांटकर नहीं खाते।
फ्रिज में एक्सक्लुसिवली एक बच्चे के
लिए ही रखी होती हैं।
मज़ाल है कि कोई ग़ैर बच्चा
उसकी तरफ आँख भी उठा कर देख ले।

चुन्नू,अब शायद डॉ. शर्मा के
नाम से जाना जाता है,
अब उस में ना चुलबुलापन है,
और ना ही निर्दोष स्नेह।
कई बार ये ख़्याल आता है,
बड़ा होते ही एक इंसान
सियार कैसे बन जाता है!
कई तो लोमड़ी और गिरगिट
भी बन जाते हैं।

मेरे बचपन के दोस्त अब बड़े हो गए हैं,
सफल हो गए हैं।
बहुत पैसा और नाम कमाया है,
बस,इंसानियत बेचकर।
तरक्की के इस दौर में,
जो ना बिक जाए वो कम है।
सब कुछ बिक रहा है-
ईमान,धरम,प्यार,रिश्ते,
अपनापन और न जाने क्या क्या !

मेरी अम्मा को दादी से
कभी कभी शिकायत हो जाती थी।
सारे दिन का काम काज करके,
जब भी थोड़ा आराम करने बैठती,
अम्मा को दादी कोई ना कोई
काम पकड़ा ही देती थी।
पर मेरी अम्मा को ऐसा दुःख
उसकी बहुओं ने नहीं दिया।
वो तो उसे बड़े आराम से
ओल्ड ऐज होम में छोड़ कर आयीं।

हाईवे या शहर की सड़कों पर
जब भी कुत्तों के पिल्लों को
कारों के नीचे बेमौत मरते देखता हूँ,
तो वो गौरेया का बच्चा हर बार याद आ जाता है,
बड़े जतन से हमने उसकी जान बचायी थी।
आज का इंसान बड़े हक़ से जानवरों के जीने का हक़ छीन रहा है।
एक बड़े दूरदर्शी आदमी ने समझाया,
अगर पिल्ले को बचाता तो मेरा एक्सीडेंट हो जाता,
और शायद मैं ही मर जाता।

आज बछड़े के खो जाने पर
उसे ढूंढने कोई नहीं जाता।
एक नयी गाय या बछड़ा आ जाता है।
रिश्ते,सामान की तरह रीप्लेस होने लगे है,
इंसान और जानवर का रिश्ता
बड़ा व्यावहारिक सा हो गया है।
और मजेदार बात ये है कि
इंसानों का आपस में रिश्ता ही नहीं रहा।

वयस्कऔर परिपक्व होने का मतलब
संवेदनहीन हो जाना है।
मैं बड़ी मुश्किल में हूँ,
कुछ समझ नहीं आता।
बचपन में हम ने कभी नहीं जाना
कि चुन्नू का धर्म क्या है,
जाति क्या है
या क्या है उसका इकोनॉमिक स्टेटस?

आज किसी दोस्त को
घर पे चाय पर बुलाने से पहले,
ये सब जानना जरुरी है|
जानना जरूरी है कि एक प्याली
चाय की एवज में आपको क्या लाभ होगा।

बचपन की निर्दोष हँसी और
निश्छल खिलखिलहाट बेहद याद आती है।
ऐसा नहीं है कि हम अब नहीं हँसते हैं।
हम आज भी हँसते हैं,
खूब हँसते हैं,खिलखिलाते हैं,

किसी की नाकामी पर,
किसी की मुफलिसी पर,
किसी की गुरबत पर।
शमशान से निकल कर भी हँस लेते हैं।
कब्रिस्तान की दहलीज़ पर भी हँस लेते हैं।
कभी ज्यादा जरुरत हो तो लाफ्टर शोज़भी देख कर हँस लेते है।
किसी से मक्कारी करके भी हँस लेते हैं।
और तो और किसी से बे-यारी करके भी हँस लेते हैं।

हँसना जरुरी है वरना दर्द दिख जाएगा,
भीड़ में छुपा अकेलापन दिख जाएगा।
हँसना जरुरी है वरना लोग जान जाएंगे हमारी नाकामी को,
हमारी बेमकसद ज़िन्दगी को।
बेशक,आज हमारी हँसी में सोने की चमक ना हो,
काली रात की परछाई तो है।
बेइंतहा मक्कारी की अंगड़ाई तो है।

अटारी पर मिल गए थे कुछ पुराने सिक्के
और दे गए मुझे सारे जहाँ की दौलत का एहसास।
आज के क्रेडिट कार्ड और
ऑनलाइन ट्रांसेक्शन के दौर में
वो ख़ुशी कहाँ जो एक आने की
टॉफी और चूरन
खरीद कर मिलती थी।

मुझे याद है पंडित जी की पंसारी की दुकान।
ऑरेंज कलर का लेमनचूस बड़े शौक से
हम लाते थे और खाते थे।
एक चवन्नी काफी थी
सारे जहाँ की खुशियाँ देने के लिए,
जो दस-दस क्रेडिट कार्ड भी नहीं दे पाते आज।
गुमसुम सा हो गया था मैं।
क्या ये एहसास सिर्फ मेरी
पीढ़ी का था या फिर पीढ़ी दर पीढ़ी
चली आ रही रवायत है ये।
हर नई पीढ़ी में इंसान की
नस्ल बदल जाती है,

हम जानवरों जैसा बर्ताव करने लगते है।
जंगल से निकल कर हम
शहरों में आये थे,
और अब शहर को जंगल बना रहे हैं।

मेरी उलझने बढ़ती जा रही थीं।
क्या बचपन ही ज़िन्दगी है?
अगर है,तो हम बड़े क्यों हुए
अगर है,तो हम अपने पैरों पे खड़े क्यों हुए?

मैं उतर आया अटारी से
इस संकल्प के साथ कि
अब दोबारा वहां नहीं जाऊंगा।
अपने होने का एहसास वहीं छोड़ आया।
संवेदना की टीस को छुपा आया।
बचपन की यादों को भूल जाना बेहतर है,
सारा ज़माना भूल चुका है।

अभिलाषा

समंदर का किनारा बड़ा सुहाना,बहुत ही प्यारा,
सोचता हूँ क्यों न मैं भी समंदर बन जाऊँ?

कितना विशाल है ये समंदर,
गहराई बेपनाह है इसके अंदर,
लहरें बल खाती हैं,इठलाती हैं
साहिल को चूम जाती हैं।

कितना सुहाना है ये नज़ारा
सागर,मौजें और ये किनारा
सब कुछ बड़ा मनमोहक लगता है
दिन कब ढला कहाँ पता चलता है।

अब तो बस उसकी लहरों पर टिकी हैं निगाहें,
यूँ लगता है बातें करती हैं गोया गाहे बगाहे।

क्या नहीं है इसमें,
सब कुछ तो है इसके अंदर,
फिर भी कितनी शांत और स्थिर है ये,
सोचता हूँ क्यों न मैं भी समंदर बन जाऊँ।

कोई इसे जीतना चाहता है,
तो कोई इसमें समा भी जाता है,
अजब सा रहस्य है ये समंदर।

मैं डूबा था अपने ख्यालों में
मैं मुग्ध था अपने विचारों में
कि मंद बहती हवा ने जैसे टकोरा
ठण्ड की सिहरन ने जैसे झकझोरा।

मैंने कुछ नया सा महसूस किया,
यूँ लगा जैसे किसी ने दिल पर दस्तक दी हो।
कौन था वो अनजाना,
कौन था वो अपरिचित, बेगाना,
आखिर कौन था जो मुझे सदायें दे रहा था।

मैं विचारों में था या मुझ में विचार थे,
मैं किसी और लोक में था,
या मुझ में कुछ अलौकिक था?
मैं महक रहा था,मुझ में कुछ संवर रहा था।

बहते मंद पवन में कुछ तो खास था,
इक धमक थी,एहसास था,
कुछ नया,अदम्य,अविचल सा था
हवाओं से बातें करना नैसर्गिक भी था।
ये है तो मैं हूँ,ये है तो जीवन है
ये बसंती,पुरवाई और न जाने क्या क्या है।

सोचा मैं भी क्यों न पवन बन जाऊँ
मेरा मन भी पवन की तरह ही बहता है,
मेरा मन भी इसकी मानिन्द ही मचलता है,
अरे! मेरा मन तो एकदम पवन जैसा ही है।

ये है तो धरा है,धराकी सुन्दर छटा है,
कोयल की कूक और पपीहे के गीत हैं,
इसके ही दम पर जीवन की हूक है।

सोचा मैं भी हवा बन जाऊँ,
और इत-उत हर कोने में फिर आऊँ।

महकती हवा का नशा कुछ और होता है,
मचलती हवा का बड़ा शोर होता है।
हवाएं बदलती है,फिज़ाओं का रंग ऐसा
चमकते चाँद सा निकल आया हो मुखड़ा जैसा।

मैं भी हवा बन जाना चाहता हूँ।
महकना और बल खाना चाहता हूँ।
लोगों के दिलों में उतर जाना चाहता हूँ,
अरमान-ओ-महफ़िल में समा जाना चाहता हूँ।

सोचा मैं भी क्यों न हवा बन जाऊँ,
उसकी आगोश में चुपके से समा जाऊँ,
उसकी साँसों को अंदर तक महका आऊँ।
सोचा मैं भी पवन बन जाऊँ।

इसी उधेड़ बुन में बादल कब मंडराए,
अँधेरे घनघोर छाए,कुछ पता ही न चला।

टिप कर के एक बारिश की एक-एक बूँद
मेरी नाक से टकराई,
चेतन-अवचेतन सब कुछ हिला गई।

मैं अपनी कल्पनाओं से बाहर निकला,
ख्वाबों और ख्यालों से कहीं दूर निकला।

मन तो आखिर फिर भी मन है,
इसी को कहते चंचल चितवन हैं ।

बारिश की बूंदे बड़ी प्यारी लग रही थीं,
तन, मन, अंतरंग को दिल से भिंगो रही थीं,
जीवन को एक नया संचार मिल रहा था,
मेरे अंदर ही एक नया संसार खिल रहा था।

मैं पूछ ही बैठा –
अरी ओ वर्षा! तुम,इतनी प्यारी क्यों लगती हो ?

क्यों सब तेरा रास्ता देखें,
क्यों है सब तेरे ही रस्ते,
तेरा क्यों दीवानापन है,
तू क्यों है मन की विह्वलता,
तेरा नशा गज़ब है ग़ालिब,
मदिरा महुआ फीके लगते,
तू तो नाच नचाती है,
क्यों तू सब को लुभाती है?

गीत नए बन जाते हैं,
जब तू धरती पर आती है,
नृत्य नए बन जाते है,
जब चेहरों पर मुस्काती है,
घटा, समंदर, धरती, तारे
तेरे सदके जाते हैं,
तू जीवन से जीवन तुझसे,
सुख का राग मिलाते हैं।

मैं था मगन घटाओं में,
खोया था इन फिज़ाओं में,
रिमझिम वर्षा गीत सुनाती,
कभी धूप कभी छाँव में।
तन्द्रा टूटी, सपने छूटे,
छूटे ख्वाब ख्यालों के,
कोई था जो पूछ रहा था,
खोया हूँ किस गांव में।

अब तक आ चुका था मैं हकीकत के धरातल पर,
कोई खींच रहा था मेरा लिबास अपने नन्हे हाथों से,
मुड़ कर देखा तो एक मासूम बच्ची मेरा मुँह ताक रही थी,
गरीबी और लाचारी हर तरफ से झांक रही थी।

बच्ची ने बड़ी क्षीण आवाज़ में कहा 'भूख लगी है',
'बाबूजी! कुछ पैसे दे दो,या फिर खाना ही दे दो।'
कपड़े कम पड़ रहे थे उसके तन ढकने को,
इंसानियत जैसे मुँह छुपा रही थी मासूम चेहरे से।

मिट्टी से लथपथ पाँव तो बड़े नन्हे से थे,
आँसुओं की सूखी लकीरें चेहरे पर साफ़ दिखती थीं ,
शरीर से हड्डी और मांस का फर्क मिट सा गया था,
वो मासूम चेहरा इंसानियत का जनाजा सा लग रहा था।

मैं सुन्न पड़ गया जीव से निर्जीव हो गया,
अंदर एक तूफान सा उठा था।
शोर इतना था कि हर ओर सन्नाटा सा था,
मैं कौन हूँ, क्या हूँ, ये एक प्रश्न चिन्ह था।

ये कौन सी दुनिया है जहाँ बच्चे आज भी भूखे हैं,
ये कौन सा शहर है जहाँ के आंसू अनछुए हैं,
क्यों कोई इस मासूम को शोषित करेगा,
क्यों कोई इसके मुस्कुराने का हक़ छीनता है ?
मन खिन्न सा हो गया,
सभी सपने छिन्न भिन्न हो गए,
अब न अरमान थे न ख्वाहिशें,
न समंदर की विशालता लुभाती थी,

न हवाओं की खुशबू सुहाती थी,
बारिश की बूंदों का कोई रोमांच न था।

अगर कुछ था तो इंसानियत की बेआबरु होती तस्वीर,
तार तार होते सिद्धांतों की तकरीर,
धर्मों की निरर्थकता,

नेताओं की धन लोलुपता,
बेईमान तंत्र की निष्फलता।

हमने देखा है जानवर भी गैर बच्चों को दूध पिलाते हैं,
और यहाँ इंसान अपने-पराए पर शास्त्रार्थ कर रहा है,
फर्क समझ में आ गया,
हम इंसान नहीं,
हम जानवर भी नहीं,हम तो कुछ और ही हैं,
इसकी परिभाषा शब्दकोश में नहीं,
शायद कहीं और ही है।

मुस्कुरा लेता हूँ मैं

परत दर परत मुख़्तलिफ़ चेहरों के दौर में,
बदलती वफाओं के बड़े शोर में,
जब भी कोई मासूम सा चेहरा दिख जाए,
तो मुस्कुरा लेता हूँ मैं।

इधर गुरु का द्वार है तो उधर गिरिजा का घर,
अजान मस्जिदों की है और मंदिरों का शंखनाद भी,
चौराहों की इस भीड़ में अगर कोई 'काफ़िर' मिल जाए,
तो बेशक सर झुका लेता हूँ मैं।

उजले दामन दिखाने पे बड़ा ज़ोर है यहाँ,
तरक्की बेशुमार करने वाला मशहूर है यहाँ,
पत्थर-ओ-पीतल के इस शहर में कोई मुफ़लिस मिल जाए,
तो उसे सीने से लगा लेता हूँ मैं।

ढूंढता हूँ उसे शिद्दत से पर निशां नहीं मिलता,
उल्फत की लौ टिकी है जहाँ, वो मकां नहीं मिलता,
ख्वाबों में हो जाए उसका दीदार शायद,
इसी उम्मीद में सो लेता हूँ मैं।

पेड़ से टूटा पत्ता कुछ कहता है मुझको,
झुण्ड से बिछड़ा पंछी क्यों तकता है मुझको,
मेरे दुःख से इनका दर्द शायद बड़ा है,
यही सोचकर आँसुओं को रोक लेता हूँ मैं।

हर कोई कर रहा है नुमाइश अपनी नीयत की,
गोया, हो रही हो पैमाइश इंसानियत की,
आज नहीं तो कल ईमान मिल ही जाएगा,
इसी फरेब में जी लेता हूँ मैं।

बदस्तूर चल रहा है कारोबार उनका,
अच्छाइयों से कब रहा है सरोकार उनका,
आज नहीं तो कल खुदा मिल ही जाएगा उन्हें,
यही सोचकर सब सह लेता हूँ मैं।

बेशक पत्थरों को है गुरेज पत्थर होने से
होना ऐतबार का बेहतर है ना होने से
सच्चाई से हो न जाऊँ रूबरू कहीं
यही सोचकर मुँह फेर लेता हूँ मैं।

परत दर परत मुख़्तलिफ़ चेहरों के दौर में,
बदलती वफाओं के बड़े शोर में,
जब भी कोई मासूम सा चेहरा दिख जाए,
तो मुस्कुरा लेता हूँ मैं।

अपना देश

देखो चमन का उजला दामन दागदार कर जाते हैं
देखो गद्दारों को,मिट्टी बेच यहाँ इतराते हैं।

कुछ सिक्कों की खनक पे अपने इमां से फिर जाते हैं,
देश के दुश्मन इनके घर में सुबह शाम टिक जाते है।

इनको कहाँ पता है माँ के गौरव का क्या मोल है,
इनकी नियत,इनकी दानत,गिरगिट जैसी खोल है।

अपना देश है सोने जैसा,सोने से भी बेहतर है,
इसके कण-कण हमको प्यारे, प्यारे इसके मंजर हैं।

हमको यहाँ पे जीना-मरना,यही हमारी शान है,
इस मिट्टी से प्यार हमें है,इस पर हम कुर्बान हैं।

अपनी मां की लाज बचाने, अपनी जान लड़ा देंगे
मक्कारों की सात पुश्त को,अच्छा सबक सिखा देंगे।

हमने सबको प्यार दिया है,अच्छा सा व्यवहार दिया है
जो भी दुश्मन आँख दिखाए,दोहरे बल से वार किया है।

तुलसी,सूर,रहीम की वाणी,हमने दिल से बोली है,
समर भूमि में आल्हा गाथा हमने फिर से खोली है।

बदलती वफाओं के दौर में

डॉ. गौरी त्रिपाठी

"जब भी शाम होती
एक डिबरी जल उठती"

जैसे बादलों के घटाटोप अंधेरे में अचानक कोई बिजली कौंध जाए, जैसे उदासी और ना-उम्मीदी के निराश क्षणों में मां की आत्मीय पुकार सुनाई दे जाय, जैसे महानगर के रेतीले अजनबियत में बचपन का कोई दोस्त मिल जाय, वैसे ही कवि श्री (डॉ.) आलोक कुमार चक्रवाल जी की कविताओं में आत्मीय स्मृतियों की अनेकानेक छवियां गाहे ब -गाहे अक्सर दिख जाया करती हैं। वैसे तो इनकी कविता का मुख्य सरोकार वर्तमान ही है लेकिन वर्तमान में बार-बार स्मृतियों की आवाजाही पाठक को न सिर्फ कविता से जोड़ती है, बल्कि कवि और कविता के सांस्कृतिक परिवेश का अनिवार्य हिस्सा बना लेती हैं, कुछ इस तरह कि पढ़ने वाले को यह नहीं लगता कि वह किसी अन्य कवि की कविता पढ़ रहा है, बल्कि यही लगता कि वह अपनी ही स्मृतियों को गुनगुना रहा है।

स्मृतियों की यह आवाजाही वर्तमान से पलायन नहीं है, बल्कि चुनौतियों का सामना करने के निमित्त शक्ति संचयन जैसा है। जब सामने किसी गहरी और डरावनी खाई को पार करने की चुनौती हो तो हमें थोड़ा पीछे जाकर लंबी दौड़ लगानी होती है।इतिहास को देखना इतिहास की ओर लौटना नहीं, इतिहास का वारिस होना होता है।इन अर्थों में ये कविताएं अतीत से वर्तमान का आत्मीय संवाद भी हैं।

अपनी कविता 'मुस्कुरा लेता हूँ मैं' लिखते हुए कवि ने एक मुहावरा रचा है। वह मुहावरा है- बदलती वफाओं के दौर में'। कविता में बिना किसी अतिरिक्त शोर- शराबे के चुपचाप दाखिल होती यह पंक्ति हमारे वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक जीवन की एक बहुत बड़ी सच्चाई का केंद्रीय वाक्य बन जाती है। कविता से निकल कर यह एक पंक्ति हमारे वर्तमान फलक का 'कीवर्ड' बन जाती है, जिसका अर्थ विस्तार आज शीर्ष से लेकर गांव की गलियों तक, कहीं भी देखा जा सकता है।

'मां और रोशनी' कविता में गुम्बद की ऊंचाई के साथ नींव के अदृश्य और अनपहचाने पत्थरों के संघर्ष को बार -बार उकेरने की जद्दोजिहद दिखाई देती है। जब कवि लिखता है कि-बड़ा प्यार था उससे मुझे / जब भी शाम होती / एक ढिबरी जल उठती / और मां मुझे अपने सीने से लगा लेती।" अक्सर हमें गढ़ने, रचनेऔर संवारने वाले हाथ हमारे दाय से वंचित रह जाये करते हैं।देखा जाय तो एक अति परिचित जीवन प्रसंग से यहां एक इतिहासदृष्टि पैदा की गई है। बिना अपनी संस्कृति से जुड़े न तो वर्तमान का कोई इतिहास लिखा जा सकता है, न मानवीय सौंदर्यबोध की कल्पना ही संभव है।

हमारे बचपन की किताबों में अक्सर परियाँ होती थीं। उन परियों की कहानियां होती थीं। आज हम इतने यथार्थग्रस्त हो चुके हैं कि अब वे झूठी कल्पना या गप्प मानकर हमारे पाठ्यक्रमों और सपनों से वहिष्कृत कर दी गयी हैं। अगर पानी न हो तो मिट्टी धूल और धुवें का गुबार या ढेर बनकर हमारी आंखों में भर जाएगी। कुछ भी न उग सकेगा उस मिट्टी में। ठीक उसी तरह कल्पना न ही तो हमें यथार्थ से शायद ही कुछ हासिल हो सके।तिकडमीऔर मतलबी लोगों के पास भविष्य को लेकर न कोई सपना होता है, न कोई स्मृति। कल्पनाओं से वंचित वे यथार्थ के क्रीतदास बनकर रह जाते हैं, और जैसा कि इस सम्पादकीय का शीर्षक ही है -बदलती वफाओं के दौर में। 'परियों का देश' कवि की स्मृति भर नही है, बल्कि कवि का विजन भी है। जैसे रैदास और कबीर का बेगमपुरा।